कला, स्वायत्त समाज और संत परम्परा

हर कलाकृति मनुष्य की सर्जनशीलता का दृष्टांत है. और सृजन मनुष्य की स्वायत्तता की अभिव्यक्ति. सजीव सृष्टि का प्रत्येक घटक स्वायत्त है. मनुष्य की स्वायत्तता एक तरफ उसकी सृजनात्मक क्रियाओं तथा कल्पना जगत में मुखरती है, और दूसरी तरफ उसकी मौलिक सामाजिकता में. किसी भी समाज में मानवीय सृजन की विविधता ही मानवीय जीवन की विविधता और उसके ज्ञान-जगत को गढ़ती है. मौलिक दृष्टि में इस विविधता में कोई अंदरूनी ऊँच-नीच नहीं. इसमे निहित सभी क्रियाएं स्वायत्त सृजन-क्रियाएं हैं, तथा उनके बौद्धिक बनाम भौतिक, कला बनाम तांत्रिकी, व्यक्तिगत बनाम सामाजिक, आर्थिक बनाम सांस्कृतिक इत्यादि पक्ष एक दूसरे में घुले-मिले हुए होते हैं. इन सभी क्रियाओं के मेल से अपनी समूची आतंरिक विविधता सहित समाज सतत पुनर्निर्मित होता रहता है.

लेकिन यह सब तभी तक अर्थपूर्ण है जब तक व्यक्ति और समाज की स्वायत्तता कायम है. वर्त्तमान समाज के बारे में यह नहीं कहा जा सकता. स्वायत्त समाज तो उसके अंतर्गत ऐसे छोटे स्वायत्त समाजों और स्वायत्त व्यक्तियों का समाज है जो आपसी सहकार तथा भाईचारे के रिश्तों में बंधे होने के साथ एक-दूसरे की स्वायत्तता संजोने की भावना से प्रेरित होते हैं. उलटे आज का समाज तो दो ऐसे खेमों में बंटा हुआ है जिनमे शोषित-शोषक का रिश्ता है. एक बहुत बड़ा खेमा बहुजन समाज का है. दूसरा छोटा खेमा उन वर्गों का है जो परजीवी हैं, और जो देश में अंग्रेजी दबदबा कायम होने के बाद अस्तित्व में आये. आज स्वतंत्रता के उपरांत पचहत्तर साल गुजर गये, लेकिन देश पर इन्हीं परजीवी वर्गों का अमल छाया हुआ है. इसके चलते सारे समाज की आतंरिक क्रियाएं प्रभावहीन हुई सी जान पड़ती हैं. सारी कसौटियां परकीय हैं; सब कुछ मानो बाहर से चलाया जा रहा है. बहुजन समाज के अपने विस्तृत ज्ञान का दखल अपने आप के बचाव भर का रह गया है; समाज के पुनर्निर्माण में उसकी भूमिका बलात् नकार दी गयी है.

आश्चर्य नहीं जो कलाकार के कला-ज्ञान के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ हो. ललित कला और लोककला के बीच अलगाव कि स्थिति है. माना यह जाता है कि ललित कला व्यक्तिपरक भावनाओं का आविष्कार है, जब कि लोककला सामूहिक भावनाओं का. ललित कला का दर्शक, श्रोता, वाचक और अभिभावक अभिजात वर्ग है. कलाकार अपनी भावनाओं की सत्यता मनवाने के लिए उसी वर्ग के मूल्यों को प्रतिष्ठित कर ही सार्वजनिक मान्यता पाने में सफल हो सकता है. चूँकि ये मूल्य भी आज कॉर्पोरेटों के अमल में चलती डिजिटल-मीडिया के सर्वव्यापी माध्यम से थोपे जा रहे हैं, स्थिति और भी अधिक

निराशाजनक है. इसके विपरीत लोककला की प्रस्तुति में कलाकार और दर्शक-अभिभावक के बीच कोई मौलिक दूरी नहीं होती, बल्कि दोनों ही पक्षों के साझा अनुभवों का दर्शन होता है. लोककला अपने आप में किसी बाहरी मान्यता की प्राप्ति के पीछे नहीं भटकती बल्कि सामान्य जीवन का हिस्सा बनी रहती है. लेकिन सामान्य जीवन तो आप ही शापित है!

इस प्रकार व्यक्तिगत प्रतिभा से भरपूर ललित कलाकार हो, या सामूहिक प्रस्तुति के माध्यम से अपनी प्रतिभा उजागर करता लोक-कलाकार, दोनों ही समाज के सतत पुनर्निर्माण में अपनी भागीदारी और भूमिका अदा कर पाने से वंचित हैं, तथा कला मात्र मनोरंजन और उपभोगवाद की तीमारदारी का जरिया बना दी गयी है. इस स्थिति से उबरने की प्रक्रिया क्या हो? यह कला समागम इसी खोज में एक पहल है.

कला और कलाकार का तकाज़ा स्वायत्त समाज का है, ऐसे समाज का जिसमे सामान्य जीवन की प्रतिष्ठा है, जिसमे कलाकार सामान्य जीवन का ताना-बाना बुनने में और आपसी मेल-जोल तथा भाईचारे के सम्बन्ध कायम करने में अग्रणी हो सके. आज भी बहुजन समाज के जीवन में ऐसी धाराओं का वजूद है जो स्वायत्त समाज का सार प्रतिबिंबित करती हैं. इनमे संत-परम्परा प्रमुख मानी जायेगी.

उदाहरण के तौर पर महाराष्ट्र की प्रतिभाशाली संत-परम्परा ही लें. पंढरपुर की वारी (यात्रा) इस परम्परा की बड़ी देन है. हर साल यह वारी दो बार की जाती है - कार्तिकी एकादशी और आषाढी एकादशी को. हाल ही में 29 जून को आषाढी एकादशी को यह सम्पन्न हुई. महाराष्ट्र के कोने कोने से ज्ञानेश्वर, तुकाराम, नामदेव, मुक्ताबाई, एकनाथ, गजानन महाराज जैसे संतों के नाम की चालीस से अधिक पालकियां एकादशी के दिन पंढरपुर पहुंचती हैं. टाळ-मृदंग की ध्वनि में भजन-कीर्तन करते 'वारकरी' भक्त-जन पंढरपुर तक कई हफ़्तों की पैदल यात्रा करते हैं. सारे रास्ते तरह तरह की लोककलाओं की प्रस्तुति कलाकार करते हैं. मार्ग में भक्तों को साथ जोड़ते जाते हैं. मानो अनेक छोटे स्थानीय समाज मिलकर बृहत् समाज गढ़ रहे हों. राज्य में कई स्थानों पर वितरित और स्वयंस्फूर्त स्वायत्त रूप से चलने वाला यह वारकरी उत्सव सदियों से आपसी मेल-जोल, सह-जीवन, सहकार, भाईचारा, त्याग और सामाजिक समता की महान मिसाल कायम करता चला आया है.

क्या यह उचित नहीं कि समाज के साथ दमदार और जीवंत रिश्ता कायम करने की चाह रखने वाला हर युवा कलाकार स्वस्थ स्वायत्त समाज के पुनर्निर्माण की प्रेरणा संत-परम्परा से हासिल करे?

- गिरीश सहस्रबुद्धे